# विकास विकल्प पत्रिका

निजी प्रसार हेतु

पैक्स समाचार अंक 5 क्रमांक 6 अक्टूबर 2004

संपादकीय

# विकास विकल्प


| पृष्ठ संख्या | |
|---|---|
| 2 | *संपादकीय*<br>बाढ़ का तांडव |
| 3 | *प्रमुख लेख*<br>बाढ़ सहजीवन |
| 6 | *अंचल से*<br>बिहार के बाढ़ संभावित इलाकों में आजीविका के अवसर |
| 10 | *अंचल से*<br>सिद्धार्थनगर और बाढ़ का रिश्ता |
| 14 | *कानून के नज़रिये से*<br>कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न |
| 15 | *तकनीकी कोना*<br>ऊर्जा सेवाएं अब किसान के द्वार पर: देसी पावर के अनुभव |
| 17 | *तकनीकी कोना*<br>सोया बनाम सरसों |
| 18 | *समाचार*<br>डी.ए. प्रशिक्षण सारणी (राष्ट्रीय स्तर) |
| 19 | *आपकी राय*<br>पाठकों के प्रत्युत्तर |



इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में प्रस्तुत विचार लेखकों के हैं और यह जरुरी नही कि विकास विकल्प उनसे सहमत हो। स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक एंव संपादक डॅा० अशोक खोसला द्वारा डेवलेपमेंट ऑल्टरनेटिव्स के लिए।

वरिष्ठ संपादकः किरण शर्मा

संपादकीय बोर्डः राजीव गुप्ता, नलिनी पॅाल

सलाहकार संपादकः प्रतिमा मैथ्यूस

बी–32, तारा क्रीसेंट, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली –110016 से प्रकाशित तथा मल्टीविजन डीजिटल सिस्टम 17, रामपुरी, कालकाजी नई दिल्ली 19 से मुद्रित।

टेलीफोन : 91+11+26851158, 26967938

फैक्स : 91+11+26866031

ईमेल : pacsindia@sdalt.ernet.in, tara@sdalt.ernet.in

वेबसाइट : http://www.empowerpoor.org, http://www.devalt.org


संपादकीय

## बाढ़ का तांडव

सूखे और अकाल पर चल रही चर्चाएं समाप्त नहीं हो पाई थीं कि बाढ़ का तांडव शुरू हो गया। हाल के वर्षों में आई यह सबसे भयंकर बाढ़ है। अब तो जैसे सूखे और बाढ़ का यह दुष्चक्र हर साल दोहराया जाने लगा है। ग्रामीण गरीब जनता की हाहाकार कई सवाल खड़े करती है।

मानव जनित प्राकृतिक असंतुलन के बारे में जितना भी कहा जाए वह कम होगा। विकास के नाम पर जो परियोजनाएं लागू की जा रही हैं उनमें स्थानीय लोगों की परंपरागत जीवनशैली और तौर तरीकों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। इनसे लाभ कम और नुकसान अधिक हो रहा है। जिन पहलकदमियों की आवश्यकता है उनके बारे में कभी विचार नहीं किया जाता क्योंकि वे सरकारी नीतियों के दायरे में नहीं आती हैं। बाढ़ नियंत्रण की जो नीतियां लागू की गईं उनसे कहीं भी बाढ़ को नियंत्रित नहीं किया जा सका क्योंकि वे स्थानीय परिवेश और आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं थीं। जब तक स्थानीय लोगों की भागीदारी से, उनके सुझावों और ज़रूरतों को शामिल करते हुए नीतियां नहीं बनाई जाएंगी तब तक किसी भी प्राकृतिक आपदा का टिकाऊ हल नहीं ढूँढ़ा जा सकता।

चाहें वह बाढ़ राहत कार्य हो या फिर सूखा राहत, ज़मीनी सच्चाई यही रहती है कि असली ज़रूरतमंदों तक तो बचाव सामग्री नाममात्र को ही पहुंचती है। वितरण की प्रक्रिया के दौरान कई रूपों में बैठे दलाल अपना स्वार्थ पूरा करते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि इन आपदाओं का स्थायी हल कभी ढूँढ़ा ही नहीं जाता!

इस वर्ष तो बिहार में राहत कार्य के कुप्रबंधन ने अनेक सवाल खड़े कर दिए। जलप्रलय से संघर्ष करती गरीब जनता को राहत कहां मिलती, जहां राहत की उम्मीद थी वहां तो लूटमार और गोलीबारी हो रही थी। सामाजिक आर्थिक वर्गभेद यहां भी साफ नज़र आ रहा था। बलशाली और पहुंच वालों को ही राहत सामग्री मिल रही थी। जो लोग पहले से ही हाशिए पर हैं उनके लिए कोई उम्मीद नहीं थी। सबसे खराब हालत महिलाओं, दलितों और बच्चों की थी।

मुज्ज़फरपुर में छह बच्चों की मां, अन्जासिया देवी, ने भूख से दम तोड़ दिया, जबकि गांव के मुखिया के पास राहत सामग्री में वितरण हेतु 30 टन खाद्यान्न था। इस तरह की कई शर्मनाक घटनाएं गिनाई जा सकती हैं। खगारिया के बिवारी लाल का कहना है, 'यहां तो जैसे कोई प्रशासन है ही नहीं।' स्थानीय राहत कार्यकर्ता पुरुषोत्तम गोयल स्वयं राहत कार्यों के कुप्रबंधन को देख कर खिन्न हैं।

यदि स्थानीय समुदायों और नागरिक समूहों को बचाव कार्यों में भागीदार बनाया जाता तो हालत ऐसी नहीं बिगड़ती। लोग बेहतर ढँग से अपने अधिकार हासिल कर पाते। नागरिक समाज संगठनों की पहलकदमियों से ही बाढ़ का स्थायी हल ढूँढ़ा जा सकता है और उसका उचित प्रबंधन किया जा सकता है।

इस अंक में हमने बिहार और उत्तर प्रदेश की स्थिति का नज़दीकी से मुआयना किया है। बाढ़ के कारणों पर चर्चा की है। पैक्स कार्यक्रम के साझेदारों और अन्य नागरिक समाज संगठनों द्वारा उठाए गए सामुदायिक कदमों के बारे में भी बताया है। इनमें ही भविष्य के लिए उम्मीद नज़र आती है। बाढ़ संभावित इलाकों में आजीविका के विकल्पों पर भी बात की है।

जो इलाके आज बाढ़ की समस्या से ग्रस्त हैं एक समय में यही क्षेत्र समृद्धि का प्रतीक थे। ऐसा नहीं कि बाढ़ का प्रबंधन और नियंत्रण कोई असंभव बात है। आवश्यकता है तो पहले जैसे सामुदायिक प्रयासों की, सामूहिक विचारधारा और प्रभावी नीतियों की। इन सबमें नागरिक समाज की अहम भूमिका है। पैक्स कार्यक्रम इन प्रयत्नों को सार्थक बनाने हेतु पूरी तौर से वचनबद्ध है।

किरण शर्मा


" This document is an output from a project funded by the Department for International Development, UK, for the benefit of developing countries. The views expressed are not necessarily those of Department for International Development, United Kingdom"

# बाढ़ सहजीवन

उत्तरी बिहार भारत का सर्वाधिक बाढ़ संभावित क्षेत्र है। देश की कुल बाढ़ पीड़ित जनसंख्या का 56 प्रतिशत हिस्सा इसी इलाके से है। एक समय था जब यहां के लोग 'बाढ़ उपासक' हुआ करते थे। विडम्बना यह है कि आज वे 'बाढ़ पीड़ित' बन गए हैं। लेकिन अब नागरिक समूहों को सशक्त करने का एक आंदोलन धीरे धीरे ज़ोर पकड़ रहा है ताकि नदियों पर स्थानीय जनता का सांस्कृतिक स्वामित्व पुनः स्थापित किया जा सके।

बिहार में नदियों की घाटियों में बाढ़ सहजीवन (बाढ़ के साथ जीने) का पुराना इतिहास है। इन घाटियों की गोद में पनपने वाली सभ्यताएं बाढ़ का बेसब्री से इंतज़ार करती थीं। मानसून के महीने त्यौहार उत्सवों का समय होते थे। तारों से झिलमिलाती रात में स्त्री पुरुष नाव में बैठकर बाढ़ का गुणगान करते नहीं थकते थे। नदियों के साथ उनका एक तरह का साहचर्य था। आपस में मानवीय संबंध थे। मिथिला क्षेत्र की बलान नदी के बारे में लोग कहते थे, 'आएल बलान त बनाऊँह दलान; गेल बलान त टूटाले दलान'। बात सच थी क्योंकि बाढ़ के बाद खेत और भी उपजाऊ हो जाते थे। भरपूर फसल होती थी।

ऐसा नहीं कि उन दिनों नदियों के उफान से लोगों को डर नहीं लगता था। लेकिन उन्हें बाढ़ के संभावित समय, पानी की गहराई, इत्यादि की काफी हद तक जानकारी रहती थी और वे उसी के अनुसार सावधानी बरतते थे। किसान अपने हिसाब से नदियों के किनारे छोटे तटबंध बना लेते थे और बाढ़ के समय ज़रूरत पड़ने पर उन्हें जगह जगह से काट देते थे। बाढ़ का पानी खेतों और तालाबों में बांट लिया जाता था। इन तालाबों में न केवल सिंचाई के लिए साल भर पानी जमा रहता था बल्कि मछली पालन और मखाने की उपज भी होती थी। मिथिला क्षेत्र के लिए कहा जाता था, 'पग पग पोखर, पान, मखान, तब देखहू मिथिला की सान।' साल में एक बार, संक्रांत पर, पूरा गांव मिल कर इन तालाबों की सफाई करता था। जो तालाब और पोखर एक समय में मिथिला क्षेत्र की शान थे उनमें से अधिकतर या तो नष्ट हो गए हैं या फिर सरकार ने उन पर कब्ज़ा कर लिया है।

बाढ़ मुक्ति अभियान के दिनेश कुमार मिश्रा कहते हैं, "पहले बाढ़ बिल्ली की तरह दबे पांव आती थी लेकिन अब तो शेर की तरह दहाड़ते हुए आती है।" अंग्रेज़ों के समय से लेकर अब तक बिना सोचे विचारे विकास के नाम पर जो कदम उठाए गए हैं उनके कारण ही बिहार पर बाढ़ का यह अभिशाप लगा है। तटबंध बना कर नदियों को नियंत्रित करने की अनेक कोशिशें की गई हैं। बिना किसी योजनाबद्ध तरीके से बिहार के मैदानों में सड़कों, नहरों और रेलमार्गों का जो जाल बिछाया गया है उससे ही नदियों के प्राकृतिक अपवहन में बाधा आई और वे विनाशकारी बन गई हैं। बाढ़ मुक्ति अभियान 1991 से लगातार कोशिशें कर रहा है कि बाढ़ नियंत्रण हेतु सरकार की नीतियों के स्थान पर परंपरागत विकल्पों को बढ़ावा मिले और स्थानीय लोगों के नदियों के साथ सांस्कृतिक संबंध पुनः स्थापित हों।

उत्तरी बिहार में आठ मुख्य नदियों की घाटियां हैं – घाघरा, गंडक, बूढ़ी गंडक, बागमती, अवधारा समूह, कमला, कोसी और महानंदा। इनमें से अधिकतर का उद्‌गम तिब्बत अथवा नेपाल में है। नीचे आते हुए वे मिट्‌टी काटती आती हैं और गंगा में मिलने से पहले बिहार के मैदानों में इसे छोड़ देती हैं। मिट्‌टी के इस तरह जमा होने से जो डेल्टा बनते हैं उनके कारण भी नदियों का बहाव बिखर जाता है और मैदानों में बाढ़ आ जाती है। जब नदियां पथ बदलती हैं तो पीछे चौर छोड़ जाती हैं। पिछले 250 वर्षों में कोसी 160 कि.मी. पश्चिम की ओर चली गई है। मिश्रा बताते हैं कि, "कोसी का वार्षिक तलछट भार इतना अधिक है कि अगर उससे एक मीटर ऊँचा और इतना ही चौड़ा बांध बनाया जाए तो उसकी लंबाई भूमध्यरेखा से तीन गुना अधिक होगी।"

अंग्रेज़ों ने अपने शासन के दौरान बंगाल में तटबंध बना कर दामोदर नदी को नियंत्रित करने की कई असफल कोशिशें कीं। अंततः 1850 में उन्हें ये तटबंध तोड़ना पड़ा। स्वतंत्रता के बाद से अब तक कई सरकारों ने कोसी और क्षेत्र की अन्य नदियों को तटबंधों के जाल में बांधने की कोशिशें की हैं। तटबंधों के निर्माण से लाभ तो कुछ हुआ नहीं, बल्कि समुदायों में विभाजन बढ़ा और पानी स्थायी रूप से जमा रहने लगा।

लोगों की सुरक्षा के लिए बनाए गए तटबंधों में अक्सर दरारें पड़ जाती हैं। 1984 में कोसी के तटबंध में आई दरार से 11 गांव बह गए, 196 गांव जलमग्न हो गए और 45 लाख लोग बेघर हो गए। 1987 की बाढ़ के दौरान बिहार की नदियों के तटबंधों में 105 दरारें आई थीं।

तटबंधों से सामाजिक विभाजन भी बढ़ता है। तटबंधों के बाहर और अंदर रहने वाले समुदायों में हमेशा तनाव बना रहता है। जब नदी का स्तर बढ़ने लगता है तो तटबंधों के अंदर रहने वाले लोग जगह जगह से तटबंध काट देते हैं ताकि बाढ़ का पानी बाहर की ओर बह जाए और उन्हें खतरा न हो। लेकिन इसका दुष्प्रभाव तटबंध के बाहर रहने वालों पर पड़ता है। वे इसका विरोध करते हैं। कई बार इस वजह से गंभीर झगड़े भी हो जाते हैं। आज भी कोसी के तटबंध के किनारे 338 गांवों में करीब 8,00,000 लोग रहते हैं। जब जलस्तर बढ़ने लगता है तो कई बार वे साथ मिल कर महीनों तक तटबंधों पर ही रहते हैं।

तटबंधों के आसपास के खेतों की मिट्टी भी बहुत रेतीली हो जाती है। उनकी उर्वरता समाप्त हो जाती है। आज़मनगर ब्लॉक में सिकातिया गांव के कांत लाल मंडल बताते हैं कि 1970 में महानंदा नदी पर तटबंध बनने से पहले वे धान और जूट की अच्छी फसल करते थे। बिहार के इस हिस्से में जमीन इतनी उपजाऊ थी कि राज्य के अन्य हिस्सों से मज़दूर यहां आकर फसल काटते थे। लेकिन आज हालत यह है कि फसल के समय मंडल स्वयं पंजाब चले जाते हैं ताकि गुज़ारे के लायक कुछ कमा सकें।

इन तटबंधों ने तो बिहार के किसानों की नियति ही बिगाड़ दी है। उन्हें कृषि मज़दूरों में तब्दील कर दिया है जो अन्य राज्यों में रोज़ीरोटी तलाशते हैं। सुपाओल में, जहां कोसी नेपाल से भारत में प्रवेश करती है, लोक भारती सेवा आश्रम के पंचम भाई कहते हैं, "यहां तो हालत इतनी बदतर है कि कल तक जिन ज़मींदारों की दसियों एकड़ ज़मीन थी आज वे पान बीड़ी का ठेला लगाने को मजबूर हो गए हैं।"

1954 में जब भारत की पहली बाढ़ नियंत्रण नीति लागू की गई तो बिहार में 160 कि.मी. लंबा तटबंध था और 25 लाख हेक्टर बाढ़ संभावित क्षेत्र था। आज करीब 1327 करोड़ रू0 खर्च करने के बाद बिहार की नदियों पर 3430 कि.मी. लंबा तटबंध है। और राज्य का बाढ़ संभावित क्षेत्र कम होने की जगह बढ़ कर कर 68.8 लाख हेक्टर हो गया है।

पानी का जमा होना एक और बड़ी समस्या है। तटबंधों के बाहर तथाकथित 'सुरक्षित' इलाकों में पानी ठहर जाता है और नदी में नहीं जा पाता। स्थायी तौर से वहीं जमा हो जाता है। उपनदियां भी बंद हो जाती हैं। पानी वापिस 'सुरक्षित' इलाकों की ओर बहने लगता है। जहां कहीं भी नदियों के संगम हैं वहां पानी के बहाव को नियंत्रित करने हेतु जलद्वार बनाए गए। लेकिन इस समय उनमें से केवल एक ही काम कर रहा है।

दरभंगा के कुशेश्वर अस्थान ब्लॉक में, जहां कमला, कोसी और करेह नदियां मिलती हैं, एक बड़े क्षेत्रफल में पानी स्थायी रूप से जमा हो गया है। साल भर नाव चलती है। हालत यह है कि धान के खेतों में जल सम्बूल और कमल उगने लगे हैं। सरकार ने तुरंत ही इलाके को 'बर्ड सैंक्चुरी' घोषित कर दिया! कोसी–कमला दोआब में करीब 124,000 हेक्टर इलाके में पानी जमा हुआ है।

गंडक नियंत्रण क्षेत्र में पानी जमने की समस्या सर्वाधिक गंभीर है। इसमें सात ज़िले शामिल हैं, गोपालगंज, सरन, सिवान, वैशाली, मुजफ्फरपुर, पूर्वी और पश्चिमी

चंपारण तथा 6000 कि.मी. का नहर नेटवर्क भी है। तटबंधों से पानी के रिसाव और जवाहर रोज़गार योजना के तहत निर्मित गांव की टेढ़ी–मेढ़ी सड़कों ने स्थिति और भी बदतर बना दी है। गंडक नहर करीब 3.5 लाख हेक्टर की सिंचाई करती थी। लेकिन पानी जमा होने के कारण 7.5 लाख हेक्टर ज़मीन बेकार हो गई है। मिश्रा बताते हैं, "इसके कारण करीब 60 लाख लोगों की आजीविका नष्ट हो गई है। अब इनके सामने पलायन के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।"

सरन ज़िले में हरदिया चौर 32,000 हेक्टर ज़मीन पर फैला हुआ है। जल–जमाव विरोधी संघर्ष समिति के जितेन्द्र कुमार कहते हैं, 'गंडक नहर के कारण इस चौर के जलनिकास में बाधा आती है। समय के साथ पानी जमने की समस्या बदतर होती जा रही है।' समिति कुछ सरल सामुदायिक कदमों के ज़रिए जलनिकास की कोशिशें कर रही है ताकि ज़मीन को बचाया जा सके। दुर्भाग्यवश सरकार इस दिशा में कुछ नहीं कर रही। 1990 के पूरे दशक में इसके लिए कोई वित्त आबंटन नहीं हुआ।

बरसों से खामोश ग्रामीण जनता की सहनशक्ति अब जवाब देने लगी है। लोग स्वयं अपनी पहलकदमियों से मुद्दों के हल ढूंढ़ रहे हैं। तटबंधों को जगह जगह पर सुव्यवस्थित तरीके से काट रहे हैं जिससे तटबंध के अंदर और बाहर रहने वाले लोग खतरे से बचे रहें। अब बाढ़ आने पर भी जलस्तर आहिस्ते से बढ़ता है, पहले की तरह हठात भगदड़ नहीं मचती।

महानंदा तटबंध विरोधी संघर्ष समिति ने न केवल कई स्थानों पर तटबंध काटा है, बल्कि सरकार पर लगातार दबाव भी बनाए रखा है कि वे उसे पुनः बंद न करें। 1996 में तो स्थानीय आंदोलन के बाद समिति ने सरकारी इंजीनियरों और ठेकेदारों से लिखित आश्वासन लिया कि वे इन कटानों को हाथ नहीं लगाएंगे। सरकारी अफसर भी महानंदा तटबंध के इन 'सार्वजनिक कटानों' को स्वीकार करते हैं।

समिति के सचिव, विनोदानंद साह, शान से बताते हैं कि ' इस साल तटबंध के दोनों ओर गेंहू की जैसी फसल हुई वैसी कई सालों में नहीं देखी गई थी। प्राकृतिक बाढ़ से गांव वालों को कोई खास परेशानी नहीं होती। वह तो मानव रचित बाढ़ है जो कहर ढाती है।' बागमती नदी के तटबंध को भी 1993 के दौरान सात स्थानों पर काटा गया और गांव वालों ने उन्हें भरने नहीं दिया।

बिहार में समुदाय अब धीरे धीरे एकजुट होकर अपने बचाव हेतु स्वयं पहलकदमियां कर रहे हैं। उन परंपराओं की ओर मुड़ रहे हैं जिनके बल पर उनके पूर्वजों और नदियों का सहजीवन टिका था। घर बनाने के लिए बांस और गेड़ी का इस्तेमाल कर रहे हैं। तैरने वाले शौचालयों का निर्माण कर रहे हैं। मिश्रा कहते हैं, "बाढ़ नियंत्रण के नाम पर आधुनिक पहलकदमियों ने समुदायों और नदियों के बीच का संतुलन बिगाड़ दिया है। समय आ गया है कि हम अपने अतीत से सीख लेकर स्थिति सुधारें।"

त्रासदी तो यह है कि स्थिति सुधारने का इरादा ही नहीं नज़र आता। बारंबार आने वाली बाढ़, राहत और बचाव कार्यों पर किया जाने वाला खर्च, यह सब तो राजनेताओं, ठेकेदारों, इंजीनियरों और कुछ गैर सरकारी संगठनों के लिए भी एक उद्योग बन गया है। इसके बल पर ही उनकी सत्ता और अस्तित्व कायम है।

यथास्थिति बनाए रखने में ही इनका निहित स्वार्थ है। यही वह समूह है जो बारहक्षेत्र बांध या फिर नेपाल में कोसी पर ऊँचा बांध बनाने की वकालत करता है और उसे बिहार की बाढ़ का स्थायी हल बताता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि बांध बनने से बाढ़ नहीं रुकती, लेकिन फिर भी 1950 से लेकर अब तक हर मानसून के दौरान कोसी पर ऊँचा बांध बनाने की चर्चा होती है।

— नरेन करुणाकरन

(सौजन्यः इंफोचेंज न्यूज़ एंड फीचर्स)

# बिहार के बाढ़ संभावित इलाकों में आजीविका के अवसर

बिहार के जो इलाके आज बाढ़ की संभावना से त्रस्त रहते हैं, एक समय में वे जैवविविधता से समृद्ध थे। धान की कई प्रजातियां उगाई जाती थीं, जैसे सुगापंखी, झुलान्सर, जसवा, केशोर, केशोरबाची, परबापैंख, हिरान्कर, मरुआदंगी, बकोल, करिआ कमोद, इत्यादि। आजीविका की कोई समस्या ही नहीं थी। बाढ़ के समय खादी आधारित गतिविधियां आजीविका प्रदान करती थीं, विशेषकर महिलाओं को। बिहार का ऐतिहासिक गौरव तो अब केवल कथाओं और कहानियों तक ही सिमट कर रह गया है। पलायन तो यहां की ग्रामीण जनता की जैसे नियति ही बन गया है।

बाढ़ ग्रस्त इलाकों मे आज भी कृषि ही आजीविका का मुख्य साधन है। यहां उत्तम स्तर की मछली और दालों का उत्पादन होता है। उपलब्ध संसाधनों को देखते हुए कृषि आधारित आजीविका विकल्पों की सूची नीचे दी गई है।

| ज़मीन (स्थानीय नाम) | मिट्टी | पानी | | | फसलों के विकल्प | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | गहराई | अर्न्वाह का समय | अपगमन का समय | खरीफ | रबी | ज़ैद |
| भीथ | रेतीली लोम | – | – | – | मक्का<br>चावल<br>सब्ज़ी<br>फल<br>पेड़<br>बांस<br>ताड़<br>खजूर | तंबाखू<br>गेंहू, राई<br>अलसी<br>मक्का<br>सब्जी<br>मसाले<br>रजमश<br>गेंदा<br>मछलीपालन<br>आंगुलिकपालन<br>मधुमक्खीपालन | मक्का<br>मूंग<br>सेसबनिया<br>सब्जी<br>सूर्यमुखी<br>मधुमक्खीपालन<br>पशुपालन<br>बकरी पालन |
| ऊंचा चौरी | लोम | 50 | मध्य अगस्त | नवंबर अंत | चावल<br>सावा<br>कोदो<br>मरुआ<br>बांस<br>ताड़<br>खजूर<br>मछलीपालन<br>मेंढकपालन | गेंहू<br>जौ<br>बोरो चावल<br>प्याज<br>जई | चावल<br>चावल+मूंग+<br>तिल+ज्वार<br>मक्का<br>गन्ना+मूंग<br>मक्का+चावल<br>सेसबनिया |
| नीचा चौरी 1 | चिकनी मिट्टी लोम | 100 | मध्य अगस्त | जनवरी शुरूआत | चावल<br>मछलीपालन<br>घोंघा और<br>केंकड़ा<br>खार<br>सरपत<br>एकरी | गेंहू<br>मक्का<br>जौ<br>बोरो चावल<br>प्याज<br>सब्जी | चावल, चावल+<br>मूंग+तिल+ज्वार<br>मक्का<br>गन्ना+मूंग<br>मक्का+चावल<br>सेसबनिया |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नीचा चौरी 2 | चिकनी मिट्टी | 150 | मध्य<br>अगस्त | मध्य<br>जनवरी | चावल<br>मछलीपालन<br>घोंघा और<br>केंकड़ा<br>खार<br>सरपत<br>एकरी | बोरो चावल<br>मक्का<br>प्याज<br>सब्जी | चावल, चावल+<br>मूंग+तिल+जूट<br>+ज्वार<br>गन्ना<br>सेसबनिया |
| नीचा चौरी 3 | भारी चिकनी<br>मिट्टी | 200 | मध्य<br>अगस्त | फरवरी<br>अंत | चावल<br>मछलीपालन<br>घोंघा और<br>केंकड़ा<br>खार<br>सरपत<br>एकरी | बोरो चावल | चावल, चावल+<br>मूंग+तिल+ज्वार<br>जूट<br>सेसबनिया |
| चौर 1<br>(सरकुरबा) | भारी चिकनी<br>मिट्टी | 250 | मध्य<br>जुलाई | मार्च<br>शुरूआत | चावल<br>चिड़िया–<br>पकड़ना | मछली–<br>पकड़ना | चावल+ज्वार<br>+जूट<br>सेसबनिया |
| चौर 2<br>(लीव) | भारी चिकनी<br>मिट्टी | 300<br>(तालाब<br>500) | मध्य<br>जुलाई | मार्च<br>अंत | चावल<br>चिड़िया–<br>पकड़ना | तालाबों में<br>मछलीपालन<br>अथवा<br>पकड़ना | चावल+ज्वार<br>सेसबनिया<br>मछलीपालन |
| चौर 3<br>(माचगारा) | भारी चिकनी<br>मिट्टी | 400<br>(तालाब<br>550) | मध्य<br>जुलाई | अप्रेल<br>अंत अथवा<br>बारहमासी | चावल<br>चिड़िया–<br>पकड़ना | तालाबों में<br>मछलीपालन<br>अथवा<br>पकड़ना | चावल<br>सेसबनिया<br>मछलीपालन |

बाढ़ग्रस्त इलाकों में अपरंपरागत फसलों के उत्पादन में भी काफी सफलता देखी गई है। खरीफ, रबी और ज़ैद मौसम के लिए उपयुक्त अपरंपरागत फसलों की सूची नीचे दी गई है:

| फसल | मौसम | उत्पादन की संभावना (क्विंटल / हेक्टर) |
|---|---|---|
| जूट | खरीफ | 30 |
| एस.रोस्ट्राटा | खरीफ | 35 बीज<br>150–200 ईंधन |
| गेंदा | रबी | 35 |
| रजमश | रबी | 18 |
| सूर्यमुखी | ज़ैद | 15 |

एस. रोस्ट्राटा के बीज उत्पादन, सूर्यमुखी संसाधन, जूट, गेंदे और रजमश के लिए सुनिश्चित बाज़ार द्वारा बाढ़ ग्रस्त इलाकों में आजीविका के नए अवसर उपलब्ध कराए जा सकते हैं। वैसे तो मखाना और सिंघाड़ा इन इलाकों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हैं। लेकिन भेन्ट, सरूख, मोखाना (अपतृण) जैसी वस्तुओं के उत्पादन की संभावनाओं पर भी विचार किया जा सकता है। पश्चिम बंगाल में जल प्रबंधन और ज़मीन सुगठन पर किए परीक्षणों से पता चलता है कि मछली पालन, मुर्गीपालन, बत्तख पालन, सूअर पालन के साथ कई फसलों की उपज साल भर की जा सकती है।

बिहार के बाढ़ प्रभावित किसानों के साथ काम करने के दौरान निम्न विचारणीय सुझाव उभर कर आए:

1. नीति निर्माताओं, अफसरों और विकास कार्यकर्त्ताओं की मनोवृत्ति में बदलाव हेतु पैरवी – बाढ़ के केवल 90 दिनों के लिए योजना न बनाएं बल्कि बाढ़ संभावित क्षेत्रों में आजीविका विकास हेतु दीर्घकालीन कदम उठाएं।

2. पणधारियों की क्षमता विकसित की जाए ताकि आजीविका संबंधित विविधता को बढ़ावा मिले, जैसे भिन्न प्रकार के उद्यम, फसलें, गैर कृषीय गतिविधियां, संसाधन, जल संबंधित उत्पादों का विपणन, इत्यादि। इससे व्यवसाय को होने वाले खतरों की संभावना घटेगी।

3. बाढ़ संभावित क्षेत्रों में केन्द्रित वस्तु–आधारित कार्यनीतियों की जगह विकेन्द्रित (सहभागी) संसाधन आधारित कार्यनीतियां अपनाई जाएं।

4. बाढ़ संभावित क्षेत्रों के विकास हेतु वैकल्पिक, सहभागी, अधिक विकेन्द्रित और जवाबदेह तरीके अपनाना आवश्यक है।

5. बाढ़ संभावित क्षेत्रों की आजीविका व्यवस्था हेतु नई नीतिगत पहलकदमियों की ज़रूरत है।

6. बाढ़ संभावित क्षेत्रों में और उनके आसपास सभी शिक्षा संस्थाओं, विशेषकर कृषि विश्वविद्यालयों में बाढ़ संबंधित पहलुओं को पाठ्यक्रम में जोड़ा जाना चाहिए।

7. कृषि के टिकाऊ तरीके विकसित किए जाएं।

8. बाढ़ संभावित क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याओं पर ध्यान देने के लिए एक अखिल भारतीय तर/नम ज़मीन संस्था की आवश्यकता है।

यदि ऊपर दिए सुझावों को ध्यान में रखते हुए उचित नीतियां विकसित की जाएं और बिहार के किसानों को आजीविका के विकल्पों की जानकारी और सुविधा प्रदान की जाए तो बाढ़ के प्रकोप को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

– डॉ. अजय कुमार और डॉ. एन. चौधरी
(कृषि शोध संस्था, पटना)

# सिद्धार्थनगर और बाढ़ का रिश्ता

पूर्वी उत्तर प्रदेश में होने वाली प्राकृतिक आपदाओं में बाढ़ का स्थान सबसे पहले आता है। इस क्षेत्र में बाढ़ की परिस्थिति को जन्म देने वाले कई कारण हैं, जैसे कम समय में अधिक वर्षा, पहाड़ी क्षेत्रों से आने वाले पानी का तराई क्षेत्रों में जमा होना, नदियों और जलसंचरण प्रणालियों को तटबन्धों द्वारा संकीर्ण बनाया जाना, सड़कों और रेलमार्गों के निर्माण से प्राकृतिक जल प्रवाह में उत्पन्न अवरोध, इत्यादि।

नेपाल सीमा से सटा ज़िला सिद्धार्थनगर बाढ़ की चपेट में सबसे पहले आता है क्योंकि पहाड़ी नदियों ने अपना मार्ग इसी ज़िले से होकर बनाया है। पहले यहां बाढ़ की स्थिति प्रायः अल्प समय के लिए सृजित होती थी। आपदा की स्थिति तो कभी बनती ही नहीं थी। पर विगत तीन दशकों से बाढ़ की परिस्थिति लंबे समय तक देखने में आ रही है। इस कारण यहां किसानों की फसल बुरी तरह नष्ट हो जाती है। फसल की बर्बादी के अलावा लोगों के आवास, घरेलू सामान, अनाज, बीज आदि को भी भारी नुकसान पहुंचता है। सीमांत किसानों की दशा और भी दयनीय हो जाती है।

कृषि ही यहां आजीविका का मुख्य साधन है। यहां 91.3 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आधारित है। यहां कोई उद्योग नहीं है, किसी तरह का लघु उद्योग भी नहीं। यही स्थिति महराजगंज ज़िले की भी है। यहां मुख्यतः खेती की दो फसलें उगाई जाती हैं, रबी और खरीफ। यहां की परिस्थिति को देखते हुए रबी की फसल सर्वाधिक सुरक्षित मानी जाती है। गेंहू, सरसों, मटर व आलू की फसलें तो अच्छी होती हैं, साथ में लहसुन और पालक जैसे साग भी उगाए जाते हैं। इस क्षेत्र में नगदी फसलों की उपज नाममात्र ही है।

खरीफ की फसल प्रायः बाढ़ और कभी कभी सूखे के कारण नष्ट हो जाती है। फलस्वरूप, यहां के किसानों का दबाव रबी पर अधिक होता है। फसल के साथ साथ उस पर लगी लागत भी पानी में बह जाती है। अगर कहीं दो साल लगातार बाढ़ आ गई तो गांवों में जीवन दुरूह हो जाता है। भूमिहीन और सीमांत किसान खेती के अलावा मज़दूरी से भी आजीविका अर्जित करते हैं। खरीफ की फसल में मज़दूरों की आवश्यकता अधिक होती है। पहले समाज का ताना–बाना इस प्रकार था कि सीमांत किसानों को इस दौरान अच्छा रोज़गार मिल जाता था। अब जहां एक ओर खेतों में मशीनों के आ जाने से उनके रोज़गार की संभावना घट गई है वहीं बाढ़ के प्रकोप ने इनका जीवन और भी दयनीय बना दिया है। अभाव की स्थिति में लोग भारी संख्या में शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

*बाढ़ की विभीषिका और राहत कार्य*

बाढ़ से घिरे गांवों में आवागमन पूरी तरह ठप्प हो जाता है। 1998 की भयंकर बाढ़ ने भारी तबाही मचाई थी। इससे पहले कि प्रभावित जनता उससे उबर पाती, तीन बार और बाढ़ ने कहर ढा दिया। बाढ़ के दौरान जल–जनित बीमारियां जानलेवा रूप ले लेती हैं। दवाओं और प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं की सख्त ज़रूरत होती है, लेकिन यातायात सुविधाओं के अभाव में राहत और बचाव सामग्री किसानों तक नहीं पहुंच पाती।

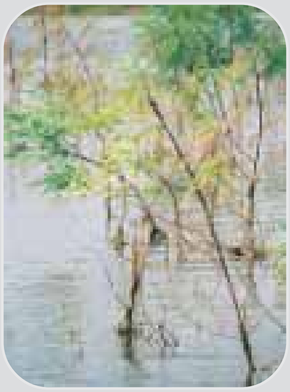

राहत कार्यों की बात पर केन्द्रीय जल आयोग, ककरही मीटर गेज के मुख्य

कार्यकर्ता जगदीश जी स्वीकार करते हैं कि, "बाढ़ आने का खतरा देख कर जब तक ज़िले के संबंधित अफसरों को नाव आदि की व्यवस्था करने की सूचना दी जाती है और उस पर कार्यवाही की जाती है, तब तक तो काफी समय निकल जाता है। बचाव सामग्री प्रायः विलंब से ही पहुंचती है।"

ज़िले के सेमरा ग्राम के निवासी शंभू इस संबंध में कहते हैं, "सरकार बाढ़ के बाद अनाज और कुछ रुपए बंटवाती है। मुझे पिछली बार बाढ़ में 125 रुपए मिले थे। अनाज पहले तो बड़े लोगों के यहां आता है। वहां पर प्रभावित लोगों की सूची बनती है। उसके बाद ही आबंटन होता है। केवल उन्हीं लोगों को अनाज मिलता है जिनकी प्रधान और बड़े लोगों में अच्छी साख हो। पिछली बार मुझे बीस किलो चावल मिला था, लेकिन बाढ़ खत्म होने के महीनों बाद। ज़रूरत का वक्त बीत जाने के बाद मदद मिले तो क्या लाभ?"

राहत कार्यों का सही समय पर व्यवस्थित ढँग से प्रबंधन न किए जाने से समस्या और भी विकट होती जा रही है। बाढ़ जनित समस्याओं के कारण ही इस ज़िले के हज़ारों युवा पुरुष और किशोर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। ज़िले के लगभग 75 प्रतिशत परिवारों में से कोई न कोई सदस्य पंजाब, दिल्ली, कलकत्ता, मुंबई जैसे शहरों में अवश्य काम कर रहा है। अब एड्स जैसे महारोग ने भी यहां अपने पैर पसारने शुरू कर दिए हैं। एक स्थानीय चिकित्सक, ओ.पी. मिश्रा के अनुसार, "1998 के बाद ज़िले में एड्स के एक दो रोगी ही दिखते थे। लेकिन अब तो मेरे अनुमान से इनकी संख्या 50 से ऊपर होगी और लगातार बढ़ती ही जा रही है।"

पलायन करना तो जैसे यहां के किसानों की नियति ही बन गई है। घर पर केवल बुजुर्ग, महिलाएं और बच्चे ही बचते हैं। कुल मिला कर परिस्थिति काफी निराशाजनक है। बाढ़ की बढ़ती बारंबारता और सूखे के कारण इस क्षेत्र की अर्थव्यवस्था दिनों दिन चरमराती जा रही है और लोगों की आजीविका का संकट गहराता ही जा रहा है।

## बाढ़ आती गयी, बंधे बनते रहे

सिद्धार्थनगर में बाढ़ के कारणों को देखें तो असहभागिता वाली विकास परियोजनाओं का हाथ साफ नज़र आता है। यहां के एक पुराने किसान और गोरखपुर विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर, के. सिंह, इस संबंध में कहते हैं, "पहले बाढ़ आपदा की तरह नहीं आती थी। बल्कि लोग चाहते थे कि बाढ़ आए ताकि उसके साथ आने वाली उपजाऊ मिट्टी से खेतों को लाभ हो। बाढ़ के बाद अच्छी फसल होती थी।"

महुआ ग्राम के निवासी, नारायण, कहते हैं, "पहले जब बाढ़ आती थी तो उसका पानी पूरे क्षेत्र में फैल जाता था। इतनी ऊँचाई तक नहीं जाता था। और कुछ दिनों के बाद ही पानी सूख जाता था। लेकिन जब से ये बांध बने हैं तब से पानी बहुत तेज़ धारा में आता है। तटबंधों के बनने से किसी विशेष क्षेत्र में पानी का जमाव अधिक हो जाता है। वहीं इनके टूटने का डर हमेशा बना रहता है। अब बाढ़ से होने वाली बर्बादियां बढ़ गई हैं।"

पर अब भी तटबंधों का निर्माण ज़ारी है। ये बनते बिगड़ते देखे जा सकते हैं। कुछ स्थानों पर नियमित रूप से ये बंधे टूट जाते हैं और प्रत्येक बाढ़ में उस क्षेत्र के गांव बुरी तरह प्रभावित होते हैं। अभी भी इनका प्रबंधन ऐसा नहीं है कि बाढ़ के समय इन्हें टूटने से रोका जा सके। इसी ज़िले के तेऊँआ गांव के एक अनुभवी किसान, रमापति जी कहते हैं, "यह इलाका पहाड़ी नदियों और नालों का है, और ये बंधे/तटबंध उनकी प्रकृति और दिशा को ध्यान में बिना रखे बनाए गए हैं। इससे स्थिति बहुत खराब हो गई है।"

केन्द्रीय जल आयोग के ककरही गेज साइट के कार्यकर्ता श्री. जगदीश प्रसाद जी कहते हैं, "1974 के आसपास जब यहां के क्षेत्रीय नेताओं और राजनीति के चलते ककरही गोनहा बंधा बना था तो नदी में 'ओवरफ्लो' और तेज़ धारा के कारण कटानों की संख्या बढ़ गई। इसके कारण स्थिति नियंत्रण के बाहर हो गई।"

स्थिति बिगड़ने के और भी कई कारण हैं। जैसे, जो भी बांध बनाए गए वहां बेसिन की गहराई इतनी नहीं थी कि वर्षा के दिनों में राप्ती, बूढ़ी राप्ती, कोरा, वनगंगा जैसी नदियों के पानी को प्रबंधित किया जा सके। इस कारण से वर्षा के दिनों में इनके चैनल खोलना ज़रूरी हो जाता है और बाढ़ की तबाही शुरू हो जाती है।

पहाड़ी नदियों के पानी को प्रबंधित कर कृषि में उनके इस्तेमाल हेतु कुछ योजनाएं और कार्यक्रम शुरू तो किए गए लेकिन प्रारंभिक अवस्था में ही वे बंद हो गए। इस संबंध में ज़िले के कृषि उपनिदेशक श्री. ओ.पी. सिंह कहते हैं, "कई बड़े बजट वाली योजनाएं, जिनसे शायद बाढ़ की स्थिति से निपटने में मदद मिलती, अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही ठप्प हो गईं। काफी आर्थिक क्षति भी हुई। 1965 के आसपास नदियों की सफाई का सुझाव भी दिया गया था। पर सरकार ने उस पर कोई गौर नहीं किया। जबकि नदियों की सफाई का खर्च इन बांधों एवं तटबंधों के निर्माण की लागत से कई गुना कम आता और स्थिति भी बेहतर होती।"

ज़िला विकास अधिकारी सरकारी नीति स्पष्ट करते हुए कहते हैं, "सरकार ने जो योजना बनाई सोच समझ कर ही बनाई होगी। इन बंधों को तोड़ा तो नहीं जा सकता। न ही इनकी उपयोगिता को नकारा जा सकता है। हां, हमें स्थिति से निपटने के लिए कोई बीच का रास्ता निकालने की दिशा में सोचना चाहिए।"

अभी भी कई तटबंधों का काम ज़ारी है और कई प्रस्तावित हैं। इनमें से कई के निर्माण पर स्थानीय लोगों ने आपत्ति भी जताई है। इस बारे में एक ठेकेदार का कहना है, "अरे, अगले बजट का इंतज़ार कर रहा हूँ। इन गांव वालों के टेंटें पेंपें करने से क्या होगा। सरकार हमें काम देगी और हमें तो काम करने से मतलब है।" साफ दिखता है कि किसे इन बंधों से फायदा होता है!

अभी ज़िले में बाढ़ की विभीषिका को खत्म करने अथवा कम करने की दिशा में कोई नीति नज़र नहीं आती। सारा बल आपदा प्रबंधन पर ही है। तटबंध बनाने, बाढ़ आने पर राहत सामग्री पहुंचाने और उसे वितरित करने का चक्र चलता ही जा रहा है। कईयों के निहित स्वार्थ पूरे हो रहे हैं। मगर गरीब ग्रामीण जनता की साल दर साल बिगड़ती हालत पर किसी का ध्यान नहीं जाता!

### बाढ़ से राहत में नागरिक समाज संगठनों की भूमिका

बाढ़ से बारंबार प्रभावित होने वाले इलाकों के लिए भी सरकार की कोई विशेष विकास रणनीति नहीं है। इस संबंध में सिद्धार्थनगर ज़िले के कृषि उपनिदेशक श्री. ओ. पी. सिंह कहते हैं, "यदि यहां भी अन्य ज़िलों में लागू की जाने वाली विकास योजनाएं ही अपनाई जाएंगी तो कोई लाभ नहीं हो सकता। जब तक यहां की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति और किसानों की समस्याओं को सामने रख कर विकास योजनाओं का निर्माण न किया जाए तब तक यहां के किसानों की स्थिति में सुधार लाना मुश्किल है।"

लेकिन इस विषय पर ज़िला विकास अधिकारी का भिन्न मत है। वे कहते हैं, "योजनाओं में कोई गड़बड़ी नहीं है। हमें उनके क्रियान्वयन और किसानों की परिस्थिति के बीच सामंजस्य बैठाना होगा। गैर सरकारी संगठनों की मदद से ही विकास कार्यक्रमों को अंजाम दिया जा सकता है। योजनाओं के संचालन और लक्ष्यित समूहों तक पहुंचने में ये संगठन काफी सहायक सिद्ध होंगे।"

हालांकि क्षेत्र के अधिकतर गांवों में लोग इन नागरिक

समाज संगठनों की भूमिका अभी तक समझ नहीं पाए हैं। कहीं कहीं तो इन्हें सरकारी तंत्र का हिस्सा ही मानते हैं। लेकिन 'भले लोगों' के रूप में इनकी एक पहचान अवश्य बन गई है। गोनहा गांव की एक महिला कहती हैं, "ये लोग हमारी स्थिति सुधारने की बात करते हैं, घर भी आते हैं, पता नहीं यह सब क्यों करते हैं, लेकिन भले लोग लगते हैं।" केवटलिया ग्राम के गणेश दत्त जी कहते हैं, "इनके (नागरिक समाज संगठनों के सदस्य) आने के बाद ही हम समझने लगे हैं कि गांव के विकास में हमारी क्या भूमिका है। अब हम पंचायत की बैठकों में जाकर अपनी बात रखते हैं। पहले हमें लगता था कि यह सब सरकार की ही ज़िम्मेदारी है।"

निश्चित रूप से पैक्स कार्यक्रम की सहयोगी संस्थाओं की पहलकदमियों और उनके कार्यकर्ताओं के अथक प्रयासों से किसानों की मानसिकता में सकारात्मक बदलाव आया है। इस वर्ष अप्रेल से शोहरतगढ़ एन्वायरमेंटल सोसायटी के कार्यक्रमों में बाढ़ की पूर्व तैयारी पर विशेष ज़ोर दिया जा रहा है। महुआ गांव की ग्राम पंचायत समिति की सदस्या लक्ष्मी बताती हैं, "इन लोगों ने हमें सुझाव दिया कि सूखा खाना जैसे चावल, चना का भूजा, सत्तू वगैरह थोड़ी व्यवस्था करके अपने पास रख लें तो बाढ़ के समय हम काम चला सकेंगे।"

इस संबंध में ज़िले के पैक्स कार्यक्रम समन्वयक, संतोष, बताते हैं, "ऐसा नहीं था कि किसान पहले से यह नहीं करते थे। हमने बस उन्हें उचित प्रबंधन के बारे में जानकारी दी और उन्होंने हमारे प्रयासों को निरर्थक नहीं जाने दिया। आज हमारे कार्यक्षेत्र में सभी किसानों ने बाढ़ से पहले अपनी भोजन व्यवस्था सुनिश्चित कर रखी थी।"

सोसायटी के निदेशक श्री. बी.सी. श्रीवास्तव कहते हैं, "यह पूरा कार्यक्रम जन सहभागिता के द्वारा बाढ़ से होने वाले खतरों को कम करने के लिए आरंभ किया गया। जब तक गांव के लोग स्थिति को समझ कर अपनी तैयारी नहीं करेंगे, तब तक प्रशासन मदद नहीं कर पाएगा। अतः गांवों में स्वयंसेवियों का चयन करके उन्हें प्रशिक्षण दिया जा रहा है।"

कई गांवों में ग्राम पंचायतों के लिए 'बाढ़ से राहत' एक बड़ा मुद्दा बन गया है। महुआ ग्राम पंचायत में राहत सामग्री के बारे में चर्चा हुई और पंचायत की बैठक में एक नाव बनाने का बजट प्रस्ताव भी सर्वसम्मति से पारित हो गया। महुआ गांव के निवासी लक्ष्मण कहते हैं, "अपने गांव की नाव हो जाएगी तो हमें किसी की राह देखने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी और बाढ़ के समय हम अपना बचाव खुद कर सकेंगे।"

इस अभियान के अंतर्गत गांव में क्लोरीन की गोलियां और कुछ दवाएं भी बंटवाई गईं जिससे बाढ़ से पहले ही लोग खतरा कम करने को तत्पर रहें। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि किसानों ने बाढ़ से पहले ही सफलतापूर्वक अगैती धान की खेती कर फसल अपने घरों में सुरक्षित रख ली। अब बाढ़ से फसल को नुकसान होने का डर ही नहीं रहा।

बंगरा ग्राम पंचायत के एक सदस्य श्री बलराम पांडे कहते हैं, "जब ये कार्यकर्ता हमें ऐसी फसल के बारे में बताते थे तो पहले हमें इनकी बातों पर यकीन ही नहीं होता था। लेकिन इनके बारंबार कहने पर हमने थोड़े खेतों में इसकी बुआई की। फिर रोपाई हो जाने के बाद हम इनके कहे अनुसार देखभाल करते रहे। फसल तैयार होने पर ही किसानों को पक्का विश्वास हुआ। पहले तो वे हंसते थे कि बिना मौसम धान कैसे पैदा करेंगे। लेकिन अब तो गांव के सभी किसान इस बीज की मांग कर रहे हैं।"

फिलहाल तो यह कार्यक्रम केवल जोगिया ब्लॉक में चल रहा है। मगर ज़िले के अन्य क्षेत्रों में भी किसानों को ऐसी पहलकदमियों की बराबरी से ज़रूरत है क्योंकि पूरा ज़िला ही बाढ़ की विपत्ति से प्रभावित होता है।

## अगेती धान की खेती – न बाढ़ का डर न सूखे की चिंता

शोहरतगढ़ एन्वायरमेंटल सोसायटी के सहयोग से सिद्धार्थनगर में चल रहे पैक्स कार्यक्रम में किसानों के लिए 'अगेती धान' की खेती का प्रस्ताव रखा गया। संस्था ने पैक्स कार्यक्षेत्र, जोगिया ब्लॉक, के 200 किसानों को अगेती धान की खेती के लिए प्रशिक्षित किया। किसानों को बाढ़ से पहले होने वाली फसलों की जानकारी दी गई। लगातार कार्यशालाओं और व्यक्तिगत प्रयासों के ज़रिए वे किसानों को प्रेरित करते रहे। इन्हीं कोशिशों के परिणामस्वरूप वहां के किसानों ने इस साल बाढ़ आने से पहले ही धान की फसल सुरक्षित अपने घरों में पहुंचा दी।

संस्था के वैज्ञानिक डॉ. यशवंत सिंह ने किसानों को प्रशिक्षण शिविरों में बुलाकर 'नरेन्द्र 97' धान की जानकारी दी। इस बारे में संस्था के एक पर्यवेक्षक अपना अनुभव बांटते हुए बताते हैं, 'जब हम लोग शुरू में गांवों में जाकर ऐसे धान के बारे में किसानों को बताते थे जो मई तक हो जाएगा तो लोग हम पर हंसते थे।

पर इन्होंने हार नहीं मानी और संस्था के कार्यकर्त्ता किसानों को इस बात के लिए प्रेरित करते रहे कि वे ऐसी धान की फसल बोएं जो बाढ़ के पहले ही हो जाए ताकि फसल के विनाश का खतरा ही न रहे। शुरू में तो किसानों को राज़ी करने का लक्ष्य भी काफी बड़ा लगता था। कोई किसान इनकी बात सुनने को तैयार नहीं था। लेकिन धीरे धीरे जब किसानों ने इनकी पूरी बात सुनी तो उनमें से एक दो को यह बात काम की लगी और वे राज़ी हुए।

केवतलिया ग्राम के किसान मोतीलाल बताते हैं, "सही बताएं तो पहले हमने इनका विश्वास ही नहीं किया। बड़ी जोर जबरदस्ती करने पर एक बीघा धान बैठाया। मैंने इनके कहे अनुसार पूरी तरह खेती भी नहीं की। फिर भी 6 क्विंटल धान पैदा किया। आज तो गांव के सारे किसान हमारी वाहवाही कर रहे हैं।"

ग्राम महुआ की उग्री देवी कहती हैं, "मैंने डेढ़ बीघा ज़मीन में नरेन्द्र 97 धान बोया और काट भी लिया। फसल देखकर हमारे रिश्तेदार चौंकते हैं।"

ग्राम वंगरा के कामता प्रसाद भी काफी प्रसन्न हैं। उन्होंने तीन बीघा ज़मीन में अगेती धान की प्रजाति नरेन्द्र 97 बोई। शुरू में उन्हें डर था कि पानी बहुत देना पड़ेगा। पर समिति के लोग लगातार आकर हिम्मत बंधाते रहे और दिशा निर्देश देते रहे। फसल बहुत अच्छी हुई। अब खेत खाली हैं और इसमें ये सब्ज़ी लगाएंगे। उसके बाद सरसों की खेती करेंगे।

इस संबंध में संस्था के निदेशक श्री. बी. सी. श्रीवास्तव कहते हैं, "प्रत्येक वर्ष बाढ़ की वजह से या सूखे के कारण फसल बर्बाद हो जाती है। बाढ़ प्रायः 15 अगस्त से 15 सितंबर के बीच आती है। किसान आमतौर पर मानसून देखकर खेती करते हैं। जुलाई में रोपाई की जाती है। ये लंबी अवधि के धान बोते हैं (120 से 140 दिन) जो प्रायः बाढ़ के शिकार हो जाते हैं। इसके स्थान पर 90 से 100 दिन के भीतर और पहले होने वाले धान की प्रजाति का उपयोग करके सूखे के प्रकोप और बाढ़ की विभीषिका दोनों से ही बचा जा सकता है।"

अगेती धान की प्रजाति में 'नरेन्द्र 97' सर्वाधिक प्रचलित है। अगले वर्ष संस्था सीधे ब्रीडर बीज मंगवा रही है जिससे उत्पादन और अच्छा होगा। किसान अपनी और संस्था की उपलब्धि से खुश हैं। नगदी फसल की खेती के लिए संस्था द्वारा चलाए जा रहे प्रशिक्षण में बढ़चढ़ कर हिस्सा ले रहे हैं। उनका उत्साह देख कर लगता है कि शीघ्र ही यहां की तस्वीर बदल जाएगी।

– विशाल पुरी

# कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न

सदियों से चले आ रहे सामाजिक भेदभाव की बेड़ियों को पार करते हुए 21वीं सदी की महिलाएं हर क्षेत्र में पुरुषों के कंधे से कंधा मिला कर चल रही हैं। कोई भी ऐसा कार्यस्थल नहीं रहा जहां महिलाओं ने पुरुषों की बराबरी का दर्ज़ा हासिल नहीं किया है। लेकिन कार्यस्थल चाहें कोई भी हो, यौन उत्पीड़न एक ऐसी समस्या है जो बड़ी चुनौती बन कर महिलाओं के सामने आ जाती है।

हालांकि पुरुष और लड़के भी यौन उत्पीड़न का शिकार हो सकते हैं, लेकिन अधिकतर परिस्थितियों में महिलाएं और लड़कियां ही इस शोषण का शिकार होती हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक सम्मान और मर्यादा पर लगने वाले कलंक के डर से तथा आर्थिक मजबूरी से बाध्य होकर अधिकतर शोषित महिलाएं खामोशी और गोपनीयता के घेरे में अपने को बांध लेती हैं। यदि बहुत हिम्मत करके कोई पीड़ित महिला शिकायत करने की कोशिश भी करती है तो अक्सर नियमों की उचित जानकारी के अभाव में उसे न्याय नहीं मिल पाता है।

सन् 1997 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसले में यौन उत्पीड़न के विरुद्ध एक निर्देशिका ज़ारी करी जो सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के कार्यस्थलों पर लागू होती है।

### *यौन उत्पीड़न की परिभाषा :*

सर्वोच्च न्यायालय की निर्देशिका के अनुसार यौन भाव से किया गया कोई भी ऐसा अवांछनीय व्यवहार जो महिला को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपमानजनक, विचलित करने वाला अथवा अपने स्वास्थ्य या सुरक्षा के लिए खतरनाक लगे, वह यौन उत्पीड़न माना जाएगा, जैसे:

- शारीरिक स्पर्श अथवा सुझाव
- यौन सुख की मांग अथवा निवेदन
- यौन भाव से करी गई टिप्पणियां (चाहें वह अवांछनीय प्रशंसा भी क्यो ना हो)
- अश्लील सामग्री दिखाना
- यौन भाव का कोई भी अरुचिकर शारीरिक, मौखिक अथवा अमौखिक व्यवहार (इसमें बेहूदा किस्म का मजाक, अश्लील और अपमानजनक भाषा का इस्तेमाल, इत्यादि सम्मिलित है)।

यह ऐसे व्यवहारों की सूची है जो यौन उत्पीड़न में गिने जा सकते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल ये बातें ही उसमें शामिल हैं। सामने वाले व्यक्ति का उद्देश्य चाहें कुछ भी हो, चाहें वह मजाक कर रहा हो या फिर उसका इरादा स्पष्टतः अपमान करने का हो, यदि आपको ऐसा लगता है कि आपका उत्पीड़न हुआ है तो आपको उसके विरुद्ध शिकायत करने का हक है।

### *कर्मचारियों के अधिकार और नियोक्ता के कर्त्तव्य :*

इस निर्देशिका के अनुसार यह अपेक्षा करी जाती है कि हर संगठन, कार्यालय, फैक्टरी, इत्यादि में यौन उत्पीड़न की शिकायतें दर्ज़ करने के लिए एक समिति हो और शिकायत की सुनवाई का कोई समयबद्ध तरीका हो। इस समिति में कम से कम आधे सदस्य महिलाएं होनी चाहिएं तथा एक महिला द्वारा ही इसकी प्रधानता की जानी चाहिए।

अपने कर्मचारियों के लिए कार्यस्थल पर सुरक्षित वातावरण उपलब्ध करवाना हर नियोक्ता का कर्त्तव्य है। कार्यस्थल में सुरक्षित वातावरण पाना हर व्यक्ति का हक है क्योंकि यह सम्मानजनक जीवन के अधिकार और आजीविका के साधन के अधिकार से संबंधित बात है। यदि यौन उत्पीड़न के साथ भारतीय दंड संहिता के सेक्शन 375, सेक्शन 354 अथवा सेक्शन 509 के तहत बलात्कार या अश्लील उत्पीड़न जैसा कोई दण्डनीय अपराध भी शामिल हो तो यह नियोक्ता की ज़िम्मेदारी है कि वह पुलिस में शिकायत दर्ज़ करवाए और दोषी के विरुद्ध कार्यवाही शुरू करवाए।

### *नियोक्ता की ओर से निष्क्रियता की अवस्था में :*

यदि आपके कार्यस्थल में यौन उत्पीड़न के विरुद्ध कोई निर्देशिकाएं नहीं हैं तो यह कानून का उल्लंघन है। यदि निर्देशिकाएं होने के बावजूद वे आपकी शिकायत पर ध्यान नहीं देते तो आप दोषी तथा नियोक्ता दोनों के खिलाफ कचहरी में जा सकते हैं।

सर्वोच्च न्यायालय की इन निर्देशिकाओं के बावजूद वास्तविकता यह है कि अधिकतर कार्यालयों में कोई शिकायत सुविधा मौजूद ही नहीं है। कहीं पर महिलाओं को अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है तो कहीं वे नौकरी खोने के डर से यौन उत्पीड़न के विरुद्ध मुंह नहीं खोलतीं। अगर कोई शिकायत दर्ज़ करने की हिम्मत करता भी है तो कभी कभी निष्पक्ष कार्यवाही के अभाव में शोषित व्यक्ति को न्याय नहीं मिल पाता है।

जब तक ये निर्देशिकाएं कानून के रूप में उचित दण्डात्मक व्यवस्था के साथ लागू नहीं की जातीं इनका प्रभावी कार्यान्वयन सुनिश्चित करना संभव नहीं है। महिलाओं को उनके अधिकारों की जानकारी देकर सशक्त करना और इस अन्याय के विरुद्ध खामोशी तोड़ने को प्रोत्साहित करना भी अति आवश्यक है। यदि कार्यस्थल का वातावरण सुरक्षित होगा तभी महिलाएं बिना किसी भय के अपनी प्रतिभाओं और क्षमताओं का समुचित उपयोग कर सकेंगीं।

— किरण शर्मा

# ऊर्जा सेवाएं अब किसान के द्वार पर: देसी पावर के अनुभव



बहारबारी पंचायत बिहार राज्य के अररिया जिले के मैदानी क्षेत्र में हिमालय की तलहटी में स्थित है। यह क्षेत्र हिमालय से निकली नदियों और झरनों से, जो अंततः गंगा में विलीन हो जाते हैं, आच्छादित है। यहां की भूमि बहुत उर्वर है लेकिन बहुत असुरक्षित भी है। हर वर्ष यहां बाढ़ के प्रकोप से त्राहि–त्राहि होती है। यहां सरकारी ढांचा न के बराबर है। सड़कों की बहुत बुरी दशा है। इसी कारण से बहारबारी पंचायत के गांव आज भी बहुत अवविकसित अवस्था में हैं।

बहारबारी पहुंचने के लिए आपको वाया जोकीहाट जाना होगा और उस तक पहुंचने के लिए आपको कष्टदायक धूल भरे रास्तों को पार करना होगा। यह ऐसी जगह है जहां बारिश होते ही पहुंचना बहुत मुश्किल हो जाता है। बारिश होने पर आप यहां या तो बैलगाड़ी से और या ट्रेक्टर के द्वारा ही पहुंच सकते हैं। और यदि कहीं घनघोर बारिश हो जाए तो मंजिल पर पहुंचने के लिए नाव के अलावा और कोई चारा ही नहीं बचता। इस मायने में हम भाग्यशाली रहे, हम सूखे मौसम में यहां पहुंच गये। लेकिन इसके लिए हमें सिलीगुड़ी होकर जाना पड़ा। यह यात्रा आनंददायक तो थी पर बड़ी थकाने वाली थी। यहां के परिदृश्य में चारों ओर ईंट–भट्टों की धुंआ उगलती चिमनियां थी। ईंट–भट्टे का व्यवसाय यहां काफी लाभप्रद माना जाता है। एक तो यहां की मिट्टी अच्छी है दूसरे असम के रास्ते से आने वाला कोयला भी यहां सस्ते में मिल जाता है। बहारबारी के रास्ते में बांसों – हरे बांसों के झुरमुट हैं। इस क्षेत्र में बांस बड़ी प्रचुरता से पाया जाता है। बहारबारी से सबसे निकट बिजली का खंभा (बिजली नहीं) लगभग 6 किलोमीटर दूर है। किसान भाग्यवान हैं कि कम से कम एक फसल तो बो लेते हैं। हालांकि यहां इतना पानी है कि किसान चाहें तो तीन फसलें बो सकते हैं। यहां से किसी भी तरह की संचार व्यवस्था दो घंटे की दूरी पर है और यदि कहीं आपको डीजल पंप की आवश्यकता आन पड़े तो उसे केवल अररिया जिला मुख्यालय से ही प्राप्त किया जा सकता है जो यहां से 56 किलोमीटर दूर है।

## देसी पावर द्वारा विद्युतीकरण की शुरुआत

देसी पावर एक ऐसी कंपनी है जो विकेन्द्रित विद्युतीकरण आई.आर.पी.पी.एस (इंडिपेडेंट रूरल पावर प्रोडयूसर्स) को प्रोत्साहित करती है। इसके प्रबंधन, तकनीकी, एवं वित्तीय तौर–तरीके निजी क्षेत्रों जैसे हैं। ऊर्जा संयत्रों का निर्माण, उसका स्वामित्व, और संचालन देसी पावर का काम है। एक बार संयत्रों की शुरुआत हो जाने पर देसी पावर पुनर्चालित ऊर्जा संसाधनों पर आधारित इन संयत्रों को ग्रामीण समुदायों को हस्तांतरित कर देती है।

वर्ष 2001 में देसी पावर ने चावल के भूसे के ईंधन से चलने वाले 50 किलो वॉट के ऊर्जा संयत्र के लिए बहारबारी गांव का चुनाव किया। आस–पास के गांवों में यह ईंधन प्रचुरता से उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त यहां पर ग्रिड द्वारा बिजली के आने की संभावना भी नहीं थी। देसी पावर को यहां पहला सबक यह मिला कि यहां के किसानों को बिजली की कोई जरूरत नहीं। बिजली उनके किस काम की! जब किसानों के पास बिजली के यंत्र, जैसे पंप, मोटरें, प्रकाश देने के उपकरण ही नहीं है तो वे बिजली का क्या करते। इनके अभाव में बिजली की कीमत क्यों चुकाते। कुल मिलाकर बात वहीं आ पहुंची जहां से चली थी।

## बी.ओ.वी.एस.एस.एस. का उदय

बहारबारी पंचायत में लघु स्तर उद्योगों के विकास के लिए पंचायत स्तर की सहकारी समिति के रूप में बहारबारी

उद्योग विकास स्वावलंबी सहकारी समिति (बी.ओ.वी.एस.एस.एस.) का गठन हुआ। बी.ओ.वी.एस.एस.एस. ने देसी पावर के साथ मिल कर एक लघु उद्योग परिसर की स्थापना की। यह परिसर बिजली घरों से जुड़ा है। देसी पावर ने बहारबारी गांव के किसानों और उनके परिवारों के लिए ऊर्जा सेवाओं की अवधारणा को बढ़ावा दिया है। सहकारी समिति ने मशीनों में निवेश किया है और उसके रखरखाव, प्रबंधन और संचालन की जिम्मेदारी भी उसी की है। इन दिनों वहां बिजली के पंपों, बैटरी चार्जिंग करने वाले केन्द्रों, चावल और आटा मिलों और ब्रिकिंटिंग प्रेसों में निवेश किया जा रहा है। बी.ओ.वी.एस.एस.एस. ने उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुसार ऊर्जा सेवाओं का एक सेट तैयार किया है जिसकी यहां बेहद मांग है। इस सेट में निम्नलिखित सेवाएं शामिल हैं:

सुनिश्चित सिंचाई सेवाएं

बैटरी रिचार्जिंग सेवाएं

चावल उसनना सेवाएं

चावल मिल सेवाएं

आटा पीसने की सेवाएं

बायोमास ब्रिकिटिंग सेवाएं

उपकरण निर्माण और मरम्मत सेवाएं

देसी पावर ने ऊर्जा सेवाएं प्रदान करने के कार्य में महारथ हासिल कर ली है। अब गांव वाले इन सेवाओं की कीमत अदा करने को तैयार हैं। पहले जिन लोगों को मेन लाइन से सीधे बिजली लेने में कोई धर्मसंकट नहीं होता था, वे अब अपने ही द्वारा दी जाने वाली सेवाओं की कीमत देने को तैयार हैं। किसान 75 एम.एम. के पाइप से पानी की आपूर्ति के लिए 35 रुपया प्रति घंटा की दर से भुगतान कर रहे हैं। फसल के समय भुगतान करने की स्थिति में यह दर 49 रुपया प्रति घंटा हो जाती है। बैटरी चार्जिंग की दर 6 से 12 रुपया प्रति चार्ज है। चावल उसनना सेवाओं के लिए 200 रुपया प्रति टन लिया जा रहा है। जैसे–जैसे उपभोक्ताओं की मांग बढ़ती जा रही है वैसे–वैसे तालिका में सेवाओं की सूची भी बढ़ रही है। यह बात किसानों को इस्तेमाल की गई बिजली की कीमत देने के लिए बाध्य करने की बहस से एकदम विपरीत है। लगता है अपनी कार्य प्रक्रिया में बी.ओ.वी.एस.एस.एस. और देसी पावर ने 'बिजली की कीमत न देने' जैसी महत्वपूर्ण समस्याओं को सुलझा लिया है। इन प्रश्नों का उत्तर प्रोद्योगिकी के आकार, स्थानीय लोगों की आवश्यकता की सोच, संस्थागत प्रबंध और सेवाओं के अनुकूलन में छुपा हुआ है। ग्रामीण भारत की आवश्यकताओं के लिए बी.ओ.वी.एस.एस.एस. और देसी पावर दोनों मिलकर सेवाओं की तालिका में वृद्धि करने और सेवाओं के एक स्थायी मॉडल बनाने की कोशिशों में जुटे हैं। हम उन्हें और गरीब किसानों को अपनी शुभकामनाएं देते हैं।

— अरूण कुमार

अन्य जानकारी हेतु, निम्नलिखित पते पर संपर्क करें :

डॉ. अरुण कुमार,
उपाध्यक्ष,
डेवलपमेन्ट आल्टरनेटिव्स,
बी–32, तारा क्रिसेंन्ट,
कुतुब इन्स्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली – 110016

# सोया बनाम सरसों

*खाद्य तेलों से जुड़ी भारतीय भोजन संस्कृति के समक्ष भावी चुनौतियाँ और उनका समाधान*
*डॉ. वन्दना शिवा की मूल अंग्रेजी पुस्तक 'मस्टर्ड ऑर सोया' पर आधारित*

अपना भारत देश कभी सोने की चिड़िया कहलाता था। कभी अंतरराष्ट्रीय व्यापार का केंद्र रहा यह देश विश्वभर को मसाले, रत्न, आभूषण, औषधियां, सौंदय प्रसाधन, वस्त्र और कृषि के औजार निर्यात करता था। विश्वभर से यहां स्वर्णमुद्राएं आती थीं और सोने के बदले जाता था समान। इसी सोने की चिड़िया को लूटने के लिए शताब्दियों तक हमले होते रहे। कभी विदेशी हमलावरों ने तो कभी विदेशी व्यापारियों ने यहां लूट के शासन स्थापित किए। भारत का जमकर शोषण हुआ। यहां से लाखों टन सोना, आभूषण, रत्न और अन्य अमूल्य वस्तुएं लगातार लूटी जाती रहीं। और आज़ादी के बाद लूट, शोषण और अन्याय का यह सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है। यह काम अब विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियां कर रही हैं। यह लूट कई प्रकार के हथकण्डों से की जा रही है। कहीं पर पेटेंट है तो कहीं पर खुली अर्थव्यवस्था। यह सभी शोषण के ही औज़ार हैं। और इन्हीं औज़ारों में नया हथियार बना है बाज़ार। किसी देश के बाज़ार पर कब्जा कर लो तो फिर कुछ और करने की जरूरत नहीं। इस बाज़ार को कब्जाने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियां हर घटिया से घटिया हथकण्डा अपना रही हैं। इससे उस देश को, उसकी जनता को, उस जनता की परम्परा और संस्कृति को, जनता के स्वास्थ्य और जीवनशैली को क्या नुकसान पहुंचता है इसकी चिंता इन बहुराष्ट्रीय कंपनियां को तो होती ही नहीं वरन् वे इन सबको ध्वस्त करने में विशेष रूचि अवश्य लेती हैं। सरसों के तेल में मिलावट, उससे राजधानी दिल्ली में तीन दर्जन मौतें, देशभर में सरसों तेल पर पाबंदी, फिर खुले तेल की बिक्री पर पाबंदी, बिक्री के लिए तेल का डिब्बाबंद होना जरूरी बनाना, तिलहन को मुक्त आयात की सूचि में डालना, अमरीका सोयाबीन एसोसिएशन का सक्रिय होकर सोयाबीन का भारत में बाज़ार तलाशना – यह सब एक के बाद एक ऐसे घटनाक्रम हैं जो सन्देह की स्थिति पैदा करते हैं। यह सब देखकर सहज आशंका होती है कि यह हमारे विकेंद्रित, पारम्परिक, अल्प पूंजी निवेश वाले ग्रामोद्योग क्षेत्र को ध्वस्त करने, हमारी विशिष्ट भोजन शैली को बदलने, हमारी प्राकृतिक सम्पदा और कृषि संस्कृति को समाप्त करने और हमारे ऊपर विदेशी भोजन की शैली, स्वाद और विधि को थोपने का षड्यंत्र है।

सरसों तेल के इस दुभार्ग्यपूर्ण काण्ड को घटे अभी एक साल का समय भी नहीं बिता है कि हमारी कच्ची तेल घानियों को अस्तित्व का संकट पैदा हो गया है। इनके उजड़ने की खबरें आनी शुरू हो गई हैं। मुक्त आयात नीति के तहत तिलहनों का विदेशों से धड़ल्ले से आयात हो रहा है। परिणाम यह है कि घरेलू तेल उद्योग और तिलहन की खेती ध्वस्त हो रही हैं। अगर यही स्थिति रही तो एक अरब की आबादी वाले इस देश में रोजमर्रा की खाने पीने की चीज़े आयात पर निर्भर हो जाएंगी जो कि आर्थिक तौर पर विनाशकारी होगा ही जिससे हमारे संप्रभुता पर भी आंच आएगी। यह हमारी विशिष्ट भारतीय भोजनशैली के खात्मे और हमारे प्राकृतिक संसाधनों के अपहरण का आधार बनेगा। ऐसी स्थिति में जरूरी है कि हम सरसों से जुड़ी भोजनशैली की रक्षा को अपने जीवन का अंग बनाएं। यह प्रयास ही हमारी लोकपरम्परा और विशिष्ट पहचान को बचाएगा।

आशा है राष्ट्रहित में उठाए गए इन सभी आंदोलनात्मक, रचनात्मक प्रयासों के साथ देश का जागरूक नागरिक सक्रियतापूर्वक जुड़कर देश की कृषि–संस्कृति और स्वदेशी भोजन परम्परा की रक्षा के इस अभियान को सशक्त बनाएंगे।

समाचार

# डी.एस. प्रशिक्षण सारणी (राष्ट्रीय स्तर)

(पिछले अंक में हमने ''डेवलपमेंट आल्टरनेटिव्स'' के सालाना प्रशिक्षण कार्यक्रम की सरणी दी थी। निम्नलिखित सारणी उसी का शेष कार्यक्रम है।

| महीना | प्रशिक्षण कार्य | तिथि | लक्ष्यित समूह |
|---|---|---|---|
| नवम्बर '04 | ♦नेतृत्व विकास | 1–5 | नागरिक संमाज संगठनों के वरिष्ठ स्तरीय व्यावसायिक |
| | ♦संवाद एवं प्रस्तुतिकरण कौशल | 8–9<br>– | नागरिक समाज संगठनों के मध्यम स्तरीय व्यावसायिक |
| | ♦पेय जल गुणवत्ता निगरानी एवं प्रबंधन | 22–27 | सामुदायिक सदस्य, भारतीय सेना का एम.ई.एस. स्टाफ /संभावित प्रशिक्षक |
| | ♦सीमेंट के कंक्रीट ब्लाको का निर्माण | | |
| | ♦व्यापार विकास कौशल | 23–27 | नागरिक समाज संगठनों के मध्यम स्तरीय व्यावसायिक |
| दिसम्बर '04 | ♦वित्तीय प्रबंधन | 1–3 | कार्यक्रम समन्वयक/ नागरिक समाज संगठनों के लेखा अधिकारी |
| | ♦सूक्ष्म–उद्यम विकास | 7–9 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| | ♦सूक्ष्म नियोजन | 14–18 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| | ♦परियोजना प्रस्ताव लेखन | 20 | नागरिक समाज संगठनों के मध्यम स्तरीय व्यावसायिक |
| | ♦रणनीतिक नियोजन एवं रिपोर्टिंग | 28–29 | नागरिक समाज संगठनों के वरिष्ठ एवं मध्यम स्तरीय व्यावसायिक |
| जनवरी '05 | ♦सहभागी नियोजन, निगरानी एवं मूल्यांकन | 3–5 | नागरिक समाज संगठनों के मध्यम स्तरीय व्यावसायिक |
| | ♦परियोजना प्रबंधन कार्यशाला (दल 9) | 11–13 | मुख्य कार्यकारी, परियोजना समन्वयक, नागरिक समाज संगठनों के लेखा अधिकारी |
| | ♦प्रक्रिया दस्तावेजीकरण एवं संचालन | 1–3 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| फरवरी '05 | ♦समुदाय आवश्यकता आकलन | 1–3 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| | ♦वाटर शेड विकास (पबढ़ाल विकास) | 7–11 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| | ♦स्व सहायता समूह की स्थापना एवं संचालन | 21–24 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| मार्च '05 | ♦ग्रामीण व्यर्थ जल प्रबंधन एवं स्वच्छता | 1–3 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| | ♦उद्यमिता विकास | 15–17 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| | ♦परियोजना प्रस्ताव लेखन | 22–23 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |
| | ♦रणनीतिक नियोजन एवं रिपोर्टिंग | 29–31 | नागरिक समाज संगठनों के कार्यकारी व्यावसायिक |

अन्य जानकारी हेतु हमारा पता है
डेवलपमेंट आल्टरनेटिव्स, बी–32, तारा क्रिसेन्ट कुतुब इन्सटीटयूशनल एरिया, नई दिल्ली – 110016

# आपकी राय

प्रिय पाठकों,

इस बार हमने बिहार और उत्तर प्रदेश की बाढ़ पर चर्चा की है। पैक्स कार्यक्रम साझेदार संगठनों की पहलकदमियों के बारे में भी बताया है। गांव वालों को किस तरह हर साल आने वाले इस जलप्रलय से बचने के लिए तैयार किया जा रहा है। अजीविका के विकल्पों पर भी बात की गई है। कानूनी पहलू में कार्यस्थल में यौन उत्पीड़न पर चर्चा की है।

मुख्य आलेख के ज़रिए बिहार में बाढ़ के कारणों को निकटता से देखने की कोशिश की है। किस तरह प्राचीन काल में बाढ़ का प्रबंधन सामुदायिक प्रयासों से किया जाता था। आज भी कुछ स्थानों पर समुदाय एकजुट होकर कदम उठा रहे हैं। इन पहलकदमियों में भविष्य के लिए आशा नज़र आती है।

आपके सुझावों और जवाबों का हमें इंतज़ार रहता है। आप हमें अपने क्षेत्र की किसी विशिष्ट समस्या अथवा उपलब्धि के बारे में भी बता सकते हैं। इस पोस्टकार्ड पर अपनी राय देने के साथ साथ पैक्स कार्यक्रम क्षेत्र के महत्वपूर्ण कार्यक्रमों, सुसंगत विषयों पर लेख, अपने विचार, कविताएं, तस्वीरें इत्यादी भी ज़रूर भेजें। आपके सहयोग से ही इस पत्रिका को रोचक बनाया जा सकता है।

भवदीया<br>
किरण शर्मा<br>
पैक्स कार्यक्रम समन्वयक

## पाठकों के प्रत्युत्तर

### आपको यह अंक कैसा लगा?

- उपयोगी
- रोचक
- साधारण
- उबाऊ
- और कोई टिप्पणी

❖ इस अंक की कौन सी विशिष्ट जानकारी, लेख अथवा कहानी आपको सर्वोपयुक्त लगी?

❖ आपके विचार से इस अंक में कौन सी जानकारी, लेख अथवा कहानी अनावश्यक थी?

❖ अगामी अंको में आप किन विशिष्ट क्षेत्रों अथवा विषयों के बारे में जानकारी पाना चाहेंगे?

❖ अंक के प्रस्तुतिकरण के बारे में आपकी क्या राय है? क्या आप इसमें कुछ बदलाव देखना चाहते हैं?

हिन्दी पाठकों की सेवा में अब निम्न पते पर पैक्स कार्यक्रम की हिन्दी वेबसाईट जल्द ही उपलब्ध होगी ।

**www.empowerpoor.org**


अधिक जानकारी के लिए कृप्या संपर्क करे:
पैक्स प्रोग्राम कोऑर्डिनेटर, डेवलेपमेंट ऑल्टरनेटिव्स
बी–32, तारा क्रिसेन्ट, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली–110016
ईमेल : pacsindia@sdalt.ernet.in वेबसाईट : www.empowerpoor.org



प्रबंधन परामर्शदाता
डेवलेपमेंट ऑल्टरनेटिव्स – प्राइसवॉटरहाउसकूपर्स प्रा॰ लि॰

समथर्क
डी॰एफ॰आई॰डी॰


डाक टिकट
लगाएं

भेजने वाले का नामः
पताः

प्रति,
पैक्स प्रोग्राम कोऑर्डिनेटर,
डेवलेपमेंट ऑल्टरनेटिव्स
बी 32, तारा क्रिसेन्ट,
कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नई दिल्ली–110016